एंटीबायोटिक प्रतिरोध, विज्ञान और राजनीति

पी. बालाराम

जीवाणु यानी बैक्टीरिया धरती पर पाए जाने वाले उन जीवों में शामिल हैं, जो किसी भी हालात में स्वयं को अनुकूल बना सकते हैं। लंबा विकास काल, अत्यधिक संक्षिप्त प्रजनन काल, सर्वाधिक विविधतापूर्ण व अक्सर प्रतिकूल हालात से रूबरू होने और प्राकृतिक चयन की अद्‌भुत शक्ति ने इन्हें धरती का सबसे लचकदार जीव साबित किया है। कई बैक्टीरिया उन प्राणियों के लिए लाभकारी होते हैं जिनमें वे पलते हैं। वे पाचन के लिए ज़रूरी एंज़ाइम उपलब्ध करवाते हैं और चयापचय की प्रक्रिया के लिए आवश्यक तत्व पैदा करते हैं। ये सामान्य जैविक कार्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। हमारी मिट्‌टी में बैक्टीरिया और फफूंद भरपूर मात्रा में हैं, जो इकॉलॉजी के संतुलन को बनाए रखने में अहम योगदान देते हैं।

वैसे बैक्टीरिया की सार्वजनिक छवि बहुत अच्छी नहीं है। उन्हें आम तौर पर संक्रामक बीमारियों के साथ ही जोड़कर देखा जाता है। मानव को रोगग्रस्त बनाने वाले सूक्ष्मजीवों (पैथोजेन) में बैक्टीरिया की संख्या बेहद कम है, लेकिन मनुष्य के स्वास्थ्य पर उनका असर सदियों से घातक रहा है। प्राणियों के जटिल प्रतिरक्षा तंत्र के बावजूद पैथोजेन इन प्राकृतिक सुरक्षा कवचों को भेद सकते हैं। वे प्रतिरक्षी प्रक्रियाओं से बचकर निकलना और उन्हें नष्ट करना सीख चुके हैं।

बीसवीं सदी की सबसे नाटकीय घटना एंटीबायोटिक्स का विकास था। इनका इस्तेमाल संक्रमण को फैलने से रोकने में किया गया। पेनिसिलीन और स्ट्रेप्टोमाइसिन इस लगातार बढ़ते समूह के शुरुआती सदस्य थे। पेनिसिलीन की संरचना का पता लगाने के लिए डोरोथी हॉजकिन ने एक्स-रे डिफ्रैक्शन का इस्तेमाल किया जिससे पहली बार बीटा-लैक्टम संरचना का खुलासा हुआ। बीटा-लैक्टम आपस में जुड़े चार अणुओं का एक छल्ला है। पेनिसिलीन के बाद आए एंटीबायोटिक्स बीटा-लैक्टम एंटीबायोटिक्स कहलाए।

पिछले कुछ अरसे से भारतीय प्रेस में *बीटा-लैक्टम* शब्द का इस्तेमाल खूब हो रहा है। इसकी वज़ह है लैन्सेट पत्रिका में के.के. कुमारसामी व अन्य शोधकर्ताओं के शोध-पत्र 'भारत, पाकिस्तान और ब्रिटेन में उभरता नया एंटीबायोटिक प्रतिरोधः आणविक, जीव वैज्ञानिक और रोग-प्रसार वैज्ञानिक अध्ययन'। इन लेखकों ने उस जीन का परीक्षण किया जो एक ऐसा एंज़ाइम बनाता है जो बीटा-लैक्टम को तोड़ देता है। इसका नाम रखा गया 'न्यू देहली मेटालो-बीटा-लैक्टामेस-1' (एनडीएम-1)। बीटा-लैक्टामेस एंज़ाइम का उत्पादन बैक्टीरिया को बीटा-लैक्टम एंटीबायोटिक को विघटित करने का मौका देता है। इस तरह से वे उन्हीं अणुओं के खिलाफ प्रतिरोधी क्षमता हासिल कर लेते हैं जो उन्हें खत्म करने के लिए तैयार किए गए थे। प्रतिरोधी जीन्स का हस्तांतरण बैक्टीरिया की आबादियों के बीच हो सकता है और यह सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए खतरा है।

लैन्सेट के शोध-पत्र में नया या आश्चर्यजनक कुछ भी नहीं है। इसका निष्कर्ष यह है कि भारत आकर सर्जरी करवाने वाले ब्रिटिश मरीज़ दवा प्रतिरोधी और अस्पताली संक्रमण के संपर्क में आ सकते हैं। आजकल मेडिकल पर्यटन के नाम पर ऐसी सर्जरी काफी आम बात है। इस निष्कर्ष से कई लोगों की भौंहें तन गई हैं। आज जिस तरह से पूरी दुनिया पर व्यापार हावी है, उससे वैज्ञानिक शोध पत्रों को भी संदेह की नज़रों से देखा जाना स्वाभाविक है, खासकर चिकित्सा के क्षेत्र में जहां शोधकर्ताओं, शोध पत्रिकाओं और दवा कंपनियों को अक्सर हितों के टकराव की कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

एंटीबायोटिक प्रतिरोध की स्थिति का अनुमान एलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने काफी पहले लगाया था। उनके अनुसार यह उस स्थिति में प्राकृतिक चयन का अनिवार्य परिणाम है जिसमें बैक्टीरिया का सामना एंटीबायोटिक से होता है। बैक्टीरिया-जनित रोगों का मुकाबला करने में अधिकांश

सफल अणु वही हैं जो अन्य सूक्ष्मजीवों द्वारा पैदा किए जाते हैं। यह एक अनूठा उदाहरण है जिसमें शत्रु और उसके खिलाफ इस्तेमाल किए जाने वाले हथियार दोनों ही प्रकृति के उत्पाद हैं। जो कृत्रिम एंटीबायोटिक अणु तैयार किए जाते हैं वे भी अक्सर प्राकृतिक उत्पादों की संरचना का ही अनुसरण करते हैं।

आखिर सूक्ष्मजीव एंटीबायोटिक क्यों बनाते हैं? क्या ये अणु पर्यावरण में स्थान पाने के संघर्ष में आक्रामक हथियार हैं? क्या ये 'ताकतवर ही जीवित रहता है' मुहावरे के साकार रूप हैं? क्या बैक्टीरिया (और अन्य सूक्ष्मजीव) पर्यावरण में जगह हासिल करने के लिए 'रासायनिक युद्ध' लड़ते हैं? किसी एंटीबायोटिक हमले से निपटने के लिए रक्षात्मक रणनीतियां बनाना जीवाणु का एक ज़रूरी काम होता है। इसकी कई रणनीतियां हैं। जैसे एंटीबायोटिक व अन्य दवाइयों को अपनी कोशिका से बाहर धकेला जा सकता है। दवाइयों के निशाने पर अक्सर प्रोटीन होते हैं। इन प्रोटीन्स को इस तरह परिवर्तित किया जा सकता है कि वे इन दवा-अणुओं के लिए अभेद्य हो जाएं। यहां तक कि बैक्टीरिया दवा के अणुओं को विशिष्ट एंज़ाइम द्वारा नष्ट भी कर सकते हैं।

बीटा-लैक्टामेस एक उदाहरण है जिसका नाम नई दिल्ली के साथ हमेशा के लिए जुड़ गया है। यह वह नाम है जो भारत के मीडिया में प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं की वजह से सुर्खियों में आया। पहली रिपोर्ट पिछले साल दिसंबर में प्रकाशित हुई थी। इसमें नई दिल्ली के एक अस्पताल में भर्ती भारतीय मूल के स्वीडिश नागरिक के शरीर से प्राप्त बैक्टीरिया *क्लेबसिएला न्यूमोनिए* में यह जीन पाया गया था। ये बैक्टीरिया कार्बापेनेम्स के प्रतिरोधी थे। वर्तमान में कार्बापेनेम्स ऐसे ग्राम निगेटिव, अवसरवादी बैक्टीरिया के खिलाफ सुरक्षा की अंतिम दीवार हैं, जिन पर सामान्य एंटीबायोटिक का कोई असर नहीं होता। नए एंटीबायोटिक भी बहुत ज़्यादा आश्वस्त नहीं करते क्योंकि इनके खिलाफ प्रतिरोध भी जल्दी ही खतरनाक स्तर पर पहुंच सकता है। न्यू देहली बीटा-लैक्टामेस की रिपोर्ट दर्शाती है कि यह स्थिति भारत के लिए और भी चिंताजनक है जहां एंटीबायोटिक प्रतिरोध के संदर्भ में स्थिति पहले ही दयनीय है।

एनडीएम-1 पर विस्तृत अध्ययन के प्रकाशन से पहले ही ब्रिटेन में कार्बापेनेम्स के प्रतिरोधी बैक्टीरिया को लेकर चेतावनी जारी की जा चुकी थी। उस रिपोर्ट में कहा गया था, 'अन्य मेटालो-बीटा-लैक्टामेस बड़ी तेज़ी से उभर रहे हैं। गौरतलब है कि इससे प्रभावित कुछ मरीज़ हाल ही में भारत और पाकिस्तान के अस्पतालों में भर्ती हुए थे।' रिपोर्ट यह भी कहती है कि भारतीय उपमहाद्वीप में कार्बापेनेम्स व्यापक तौर पर उपलब्ध हैं और सीफेलोस्पोरिन-प्रतिरोध की मौजूदगी के चलते इनका इस्तेमाल भी व्यापक पैमाने पर होता है। यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन और भारतीय उपमहाद्वीप के बीच लोगों की आवाजाही अन्य देशों की तुलना में ज़्यादा है, जिसमें मेडिकल पर्यटन भी एक वजह है। रिपोर्ट आगाह करती है कि एनडीएम-1 एंज़ाइम वाले अधिकांश बैक्टीरिया गंभीर संक्रामक रोगों के उपचार के लिए उपलब्ध सभी मानक इंट्रावीनस एंटीबायोटिक के खिलाफ प्रतिरोधी हो गए हैं।

ब्रिटेन की इस रिपोर्ट के बाद मार्च में मुंबई स्थित पी.डी. हिंदुजा हॉस्पिटल ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसका शीर्षक था: 'आंतों के बैक्टीरिया में एनडीएम-1: कार्बापेनेम्स से उपचार बाधित।' इस अध्ययन में अगस्त से नवंबर 2009 के दौरान एकत्र किए गए 24 कार्बापेनेम प्रतिरोधी बैक्टीरिया में से 22 एनडीएम-1 बनाते थे।

शोधकर्ताओं ने पूर्व के उस शोध की ओर ध्यान खींचा है जो कई स्थितियों में गैर-कार्बापेनेम एंटीबायोटिक्स के इस्तेमाल की संभावना दर्शाता है। इससे तेज़ी से प्रतिरोधी होते जीवाणुओं के खिलाफ कार्बापेनेम की क्षमता को बरकरार रखने में मदद मिलेगी। उक्त रिपोर्ट कहती है कि एनडीएम-1 निर्माण करने वाले जीवाणुओं का फैलाव भारत में इलाज करवा रहे मरीज़ों के लिए खतरनाक हो सकता है और मेडिकल पर्यटन पर इसका प्रतिकूल असर पड़ सकता है।

अगस्त 2010 में प्रकाशित लैन्सेट शोध पत्र के लेखक इससे भी आगे बढ़ गए। ऐसा उन्होंने शायद इसलिए किया क्योंकि मीडिया में ब्रिटिश मरीज़ों से आह्वान किया जा रहा था कि वे भारत में ही सर्जरी करवाएं ताकि ब्रिटिश राष्ट्रीय

स्वास्थ्य सेवा का पैसा बच सके। लैन्सेट शोध पत्र के लेखकों का तर्क था कि इससे तत्काल भले ही पैसा बच जाए, लेकिन राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा पर इसका व्यापक दीर्घकालिक प्रभाव पड़ेगा। उन्होंने ऐसे प्रस्ताव का ज़ोरदार विरोध किया। भारतीय शोधकर्ता जहां मेडिकल पर्यटन पर एनडीएम-1 के प्रतिकूल असर को लेकर चिंतित हैं, वहीं लैन्सेट के लेखकों ने मेडिकल पर्यटकों को भारत के अस्पतालों में भर्ती होने के प्रति आगाह किया है। इससे साफ है कि मीडिया में जो शोर-शराबा मचा हुआ है, वह लैन्सेट पत्रिका के व्यापक प्रभाव और जनता का ध्यान खींचने वाले शोध पत्रों को तत्काल मीडिया के लिए जारी करवाने की उसकी क्षमता का नतीजा है। हो सकता है कि ऐसे अध्ययनों को बढ़ावा देने में व्यावसायिक हित शामिल हों मगर चिकित्सकों को एंटीबायोटिक प्रतिरोध की समस्या को गंभीरता से लेना चाहिए।

भारतीय शोध पत्रिका के जिस अंक में हिंदुजा अस्पताल का वह शोध पत्र प्रकाशित हुआ, उसी में एक संपादकीय भी छपा है। इस संपादकीय में के. अब्दुल गफूर भारत में संक्रामक रोगों के प्रबंधन के संकट पर प्रकाश डालते हैं। उन्होंने अपनी टिप्पणी में काफी कठोर शब्दों का इस्तेमाल किया है और उम्मीद है कि उससे सोई हुई चिकित्सकीय जमात कुछ तो हरकत करेगी। वे लिखते हैं, 'भारत में शक्तिशाली एंटीबायोटिक का इस्तेमाल करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। भारतीय चिकित्सकों को अपने नुस्खे को जायज़ ठहराने की कोई ज़रूरत नहीं होती। कोई भी चिकित्सक एंटीबायोटिक लिख सकता है। जहां एम्पीसिलीन पर्याप्त होती, वहां मेरोपेनेम और जहां मेरोपेनेम सही दवा होती, वहां एम्पीसिलीन लिख सकता है। यहां तक कि औषधि विक्रेता भी बगैर किसी डॉक्टरी पर्चे के दवा दे सकता है।' गफूर की आवाज़ इस नक्कारखाने में शायद ही कोई सुने, क्योंकि एंटीबायोटिक संवेदनशीलता का परीक्षण कई परिस्थितियों में यहां संभव ही नहीं है।

माइक्रोबायोलॉजी ऐसा विषय है जिसमें संक्रामक रोगों की समझ की बुनियादी बातें स्पष्ट होती हैं, लेकिन अधिकांश संस्थानों के मेडिकल पाठ्यक्रमों में इसे इतना महत्त्व नहीं दिया जाता। गफूर अपने इन शब्दों में कई दुखती नसों को छूते हैं, 'भारतीय चिकित्सकीय बिरादरी को एनडीएम-1 जीन की वजह से लज्जित होना पड़ा है। हालांकि कार्बापेनेम के विकास में हमारी कोई भूमिका नहीं है, लेकिन हमने एक प्रतिरोधी जीन के विकास में तो योगदान दिया ही है और वह भी बहुत ही लुभावने नाम के साथ।'

हमारी औषधी प्रयोगशालाएं एंटीबायोटिक के मामले में सूखी हैं। बैक्टीरिया उन एंटीबायोटिक अणुओं को जल्दी ही निष्प्रभावी कर देते हैं । संक्रामक रोगों के खिलाफ युद्ध में बने रहने के लिए इस वैश्विक दुनिया में हमें सार्वजनिक स्वास्थ्य, साफ-सफाई और चिकित्सकीय शिक्षा पर नए सिरे से ध्यान देना होगा। साथ ही नए एंटीबायोटिक के विकास के लिए सतत प्रयासों में लगना होगा। बैक्टीरिया के खिलाफ युद्ध में अंतिम विजय की संभावना बहुत धुंधली है। इसके लिए हमें लगातार संघर्ष जारी रखना होगा। इस संघर्ष में यह भी ध्यान रखना होगा कि प्रकृति हमारे शत्रु के साथ है। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता

व्यक्तिगत 150 रुपए

संस्थागत 300 रुपए

सदस्यता शुल्क एकलव्य, भोपाल के नाम ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से

ई-10,शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) 462 016

के पते पर भेजें।